National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2021; 1(39): 232-234
© 2021 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. के. पुरुषोत्तमाचार्य
सहायक आचार्य,
श्रीवेंकटेश्वर वैदिक विश्वविद्यालय,
तिरुपति

Correspondence:
डॉ. के. पुरुषोत्तमाचार्य
सहायक आचार्य,
श्रीवेंकटेश्वर वैदिक विश्वविद्यालय,
तिरुपति

कृष्णयजुर्वेद में याज्ञिक चिन्तन

डॉ. के. पुरुषोत्तमाचार्य

उपोद्घात –

"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" इस स्मृतिवाक्य का अर्थ यह है कि वेद ही संपूर्ण धर्म का मूल हैं। इस जगत में जो कुछ भी विद्यमान है, उसका मूल वेद हैं। वेदों के माध्यम से ही लोगों के लिए कल्याणकारी और श्रेष्ठ कर्मों का विधान किया गया है। अतः संपूर्ण विश्व में सभी वेदों को आधार मानकर आचरण किया जाता है। यही उपर्युक्त स्मृतिवाक्य का तात्पर्य है।

यज्ञ - कृष्णयजुर्वेद -

"यज्ञ इति यज्ञेनहि देवा दिवङ्गता यज्ञेनासुरानपानुदन्त यज्ञेन द्विषन्तो मित्रा भवन्ति यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्यज्ञं परमं वदन्ति।"[1] ये तैत्तिरीयोपनिषत् का मन्त्र यज्ञ की महत्व को वर्णन कर्ता है। यह अर्थ इस् मन्त्र का यज्ञ से ही देवताओं ने दवत्व और स्वर्ग लोक को प्राप्ती किया है। कृष्ण यजुर्वेद में यज्ञ का सर्वेच्च स्थान् दिया गया है। यज्ञ के माध्यम से हि देवताओं ने राक्षसों पर युद्ध करके विजय प्राप्ती की है। यज्ञ करने से शत्रू भी मित्र बनजाता है। और इस संसार में सबकुछ यज्ञ पर ही टिकाहुआ है। इसलिये कृष्ण यजुर्वेद में यज्ञ सर्वस्रेश्ठ कर्म कहागया है। **"यज्ञो हि स्रेष्ठतमं कर्म। यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः। तानि धर्माणि प्रथमान्यासन।"**[2] अर्थात इस जगत मे यज्ञ ही सर्वेत्तम कर्म बतयाजाता है। और देवगण ने अपना इष्टप्राप्ति के लिए हर एक संदर्भ मे यज्ञ का अनुष्ठान किया है। यज्ञ का मतलब अग्निहोत्र में घी आदि द्रव्यों को डालना ही नहि, बल्कि जन कल्याण, त्याग, परोपकार, और स्रेष्ठ कर्म भी यज्ञ का ही रूप है। जव व्यक्ती अपने स्वार्थ का त्याग कर के समाज और प्रकृती की भलाई के लिए कर्म कर्ता है, तो वही यज्ञ बन जाता है।

लोककल्याण की भावना से किया गया यज्ञ प्रजाजनों की इच्छाओं की पूर्ति करता है। यज्ञ के स्वरूप का वेदों में विशेष रूप से वर्णन किया गया है। अन्य वेदों में भी यज्ञ का उल्लेख मिलता है, किंतु कृष्ण यजुर्वेद में यज्ञ के स्वरूप का पूर्ण और विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। अनेक यज्ञ-प्रकारों का विवरण वहाँ प्राप्त होता है। यज्ञ करने वाले पुरुष के प्रति यज्ञ से संबंधित नियमों का भी स्पष्ट वर्णन किया गया है। अर्थात् यज्ञ अनुष्ठान के द्वारा कृष्ण यजुर्वेद भिन्न-भिन्न प्रमुख स्थानों पर मार्गदर्शन करता है। इसलिए याज्ञिक विषयों का मूल स्रोत यजुर्वेद ही है।

वेद – यज्ञ - परमात्मा -

'विद्' (जानना) धातु से 'वेद' शब्द निष्पन्न हुआ है। अतः वेद के द्वारा प्रजा ज्ञान प्राप्त करती है ऐसा अर्थ होता है। इसलिए वेद का नाम 'वेद' प्रसिद्ध है।

"एवं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता"[3] इस शास्त्रीय वचन के अनुसार वेद ज्ञान का साधन है। वेद के द्वारा धर्म को जाना जाता है यही लक्ष्य है। प्रश्न उठता है कि धर्म को वेद किस प्रकार से उपदेश देते हैं? इसका उत्तर 'यागादिना' अर्थात यज्ञ आदि के माध्यम से दिया जाता है। 'याग' शब्द वेदों में बार बार आता है, और इसका मुख्य विवेचन कृष्ण यजुर्वेद में मिलता है। जब पूछा जाता है यज्ञ का प्रयोजन क्या है? तब गीता स्वयं उत्तर देती है :

"अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥"[4]

अन्न से सभी प्राणी जीवित रहते हैं। अन्न यज्ञ से उत्पन्न होता है। यज्ञ से वर्षा होती है। वर्षा के कारण बीज अंकुरित होते हैं और धान्य फलित होता है। यज्ञ से वर्षा होती है और वर्षा से देवताओं की तृप्ति होती है। अग्नि आदि देवताओं द्वारा वे बादलों को वर्षा करने के लिए प्रेरित करते हैं।

"तस्मादिदं प्रवदन्ति देवा उपजीवन्ति, तस्मादुतः प्रदानं मनुष्या उपजीवन्ति"[5] इस प्रकार यह वैदिक वाक्य प्रमाणित होता है।

देव यज्ञ के द्वारा मनुष्यों से संबद्ध होकर हवि से जीवन यापन करते हैं। मनुष्य भी देवताओं से संबद्ध होकर हवि के माध्यम से जीवन यापन करते हैं। देव वर्षा के द्वारा (वृष्टि से) मनुष्यों को जीवन प्रदान करते हैं। यह समस्त व्यवस्था यज्ञ कर्म के द्वारा सिद्ध होती है। इस प्रकार यज्ञ साक्षात् भगवान् का स्वरूप है। गीतावाक्य से भी यह प्रमाणित होता है -

"अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।

मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्॥"[6]

अर्थात यज्ञ स्वयं भगवान् का ही स्वरूप है। जो व्यक्ति वेदों में बताए गए यज्ञकर्म का अनुष्ठान करता है, वह वेदों को ही भगवान् के रूप में जानता है। इसी कारण गीता में कहा गया है **"वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहं"**[7] अर्थात सभी वेदों द्वारा जानने योग्य तत्व मैं (भगवान्) ही हूँ।

"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" इस वाक्य के द्वारा वेदों में भगवान् के स्वरूप का बोध कराया गया है।

शतपथ ब्राह्मण में भी कहा गया है **"अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेवेदं यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः"**[8] अर्थात ये चारों वेद परम तत्त्व की निःश्वास के समान हैं।

भगवान् जगदीश्वर ने वेदों को हमारे कल्याण के लिए उपदेश दिया है। आहार, तत्संबंधी क्रियाएँ, वर्षा, वृष्टि, जल, अग्नि आदि विषयों का सम्यक् प्रतिपादन कृष्ण यजुर्वेद संहिता में किया गया है।

<u>तैत्तिरीय संहिता का वैशिष्ट्य</u> -

कृष्ण यजुर्वेद के अंतर्गत तैत्तिरीय और मैत्रायणी नामक दो शाखाएँ मानी जाती हैं। इनमें तैत्तिरीय संहिता का विशेष महत्व है। तैत्तिरीय संहिता में कुल नौ शिक्षाएँ (प्रपाठक) हैं, जैसे व्याघ्रशिक्षा, लक्ष्मीशिक्षा, रामशिक्षा, भारद्वाजशिक्षा, कौहलीशिक्षा, आधिशली-शिक्षा, पाणिनीयशिक्षा, कौण्डिन्यशिक्षा आदि।

इन शिक्षाओं में याज्ञिक प्रक्रिया, निरुक्त, छन्दःशास्त्र, ज्योतिष और कल्पसूत्रों का सम्यक् समावेश दिखाई देता है।

<u>तैत्तिरीय - आत्रेय</u> -

तैत्तिरीय शाखा की परंपरा के अनुसार, इस संहिता का वैशिष्ट्य आत्रेय परंपरा से जुड़ा हुआ है। वेदव्यास ने कृष्ण यजुर्वेद की शाखाओं का विभाजन किया। वैशम्पायन इसके प्रमुख आचार्य थे। उनके शिष्य तित्तिरि ने इस शाखा का उपदेश किया, इसलिए यह शाखा तैत्तिरीय कहलायी।

कुछ कारणों से गुरु वैशम्पायन के आदेश से याज्ञवल्क्य ने कृष्ण यजुर्वेद का परित्याग किया। बाद में तित्तिरि (पक्षीरूप में) शेष वेद को संकलित करके उपदेश देते हैं ऐसी परंपरा प्रसिद्ध है। इसी कारण इस शाखा का नाम तैत्तिरीय प्रसिद्ध हुआ।

महर्षियों द्वारा इस शाखा का व्यापक प्रचार किया गया। इस शाखा के प्रचार के कारण इसे आत्रेयी भी कहा गया। तैत्तिरीय शाखा की संहिता अनेक आचार्यों द्वारा सुरक्षित और समृद्ध की गई है। इस संहिता के प्रचार का यह प्रमाण माना जाता है। यास्क के द्वारा वैशम्पायन की शाखा का ग्रहण किया गया। यास्क के पुत्र तित्तिरि ने उस शाखा को ग्रहण किया। और उख नामक ऋषि को उपदेश किया। ऐसा अनेक आचार्यों के द्वारा वह शाखा परंपरा से प्राप्त हुई[9]।

उपासना – यज्ञ -

इस तैत्तिरीय संहिता में विद्यमान विशेष यज्ञों के द्वारा देवताओं की प्रार्थना करना ही उपासना है। देवताओं की अनुग्रह-प्राप्ति, तत्त्वज्ञान, तत्त्व का आकार तथा मंत्रों का स्पष्ट प्रतिपादन यहाँ किया गया है। इस संहिता के उपदेश के अनुसार अनुष्ठान करने वाले अनेक उपासक विभिन्न प्रकार के अभिष्ट फल प्राप्त करते हैं। प्रथम काण्ड के प्रथम प्रपाठक में दर्शपूर्णमास इष्टि का वर्णन किया गया है।

"इषे त्वोर्जेत्वा वायवस्थोपायवस्थ"[10] इस प्रकार इस दर्शपूर्णमास यज्ञ के अनुष्ठान से जीवन में सुख, शरीर त्याग के बाद स्वर्गफल की प्राप्ति होती है। **"सौर्यं चरुं निर्वपेद् ब्रह्मवर्चसकामः"**[11] इस वचन के द्वारा ब्रह्म वर्चस को इच्छा करने वाला यजमान का निर्देष किया गया है। वर्षकाम यजमान का निर्देश किया गया है।

"चित्रया यजेत पशुकामः"[12] इस प्रकार पशु की इच्छा रखने वाले के लिए यज्ञकल्प का उपदेश किया गया है।

"वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामः"[13] इस मंत्र द्वारा भूमि की कामना करने वाले यजमान को किस यज्ञ के द्वारा इष्ट की प्राप्ति होती है, इसका क्रम बताया गया है।

उपसंहार -

तैत्तिरीय संहिता में वर्णित उपासनाएँ व यज्ञो केवल स्वर्ग आदि लोकों तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि इसी लोक में दीर्घ जीवन, अपेक्षित सुख तथा जगत् में ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का भी प्रतिपादन किया गया है। उपासना के द्वारा आहार प्राप्त होता है, उस से देह पुष्ट होती है और उस से वंशवृद्धि होती है। संपूर्ण जगत् के कल्याण के लिए रहस्य उपासना के ज्ञान का भी यहाँ प्रतिपादन किया गया है।

श्रीमहाविष्णु साक्षात् यज्ञस्वरूप हैं। यह जानकर जो व्यक्ति उपासना व यज्ञ करता है, वह अभीष्ट फल को प्राप्त करता है। कृष्ण यजुर्वेद मे अगणित संख्या मे यज्ञों की चर्चा किया गया है परंतु विस्तर भय से यह कुछ यज्ञों का परिचय करके यहां इस शोध पत्र को विरमण करता हुं। स्वस्ति प्रजाभ्यः।

आधार ग्रन्थ सूची –

1. तैत्तिरीयारण्यकम्
2. भगवद्गीत
3. तैत्तिरीय संहिता
4. शतपथब्राह्मणम्
5. अर्षविज्ञान सर्वस्वम (Published by T.T.D., Tirupati)

पाद टिप्पणी –

1. तै.उ. 3.4.78
2. तै.आ. 3.39
3. वे.भा.भू. 2
4. भ.गी. 3.14
5. तै.सं. 3.2.9
6. भ.गी. 9.16
7. भ.गी. 15.15
8. स.प.ब्रा. 14.4.103
9. अ.वि.सा.पृ - 176
10. तै.सं. 1.1.1
11. तै.सं. 2.3.2
12. तै.सं. 2.4.6
13. तै.सं. 1.3.14